SHODH SAMAGAM
ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

भीष्म साहनी के कथा–साहित्य में स्त्री स्वतंत्रता

रेखा प्रजापति, शोधार्थी, हिन्दी विभाग
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अमरपाटन, मैहर, मध्य प्रदेश, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Author
रेखा प्रजापति, शोधार्थी
E-mail : rekhaprajapatiseoni@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 25/12/2025
Revised on : 27/02/2026
Accepted on : 09/03/2026
Overall Similarity : 00% on 28/02/2026

शोध सार

स्त्री सम्पूर्ण रूप में ऐसे भय और आतंक में अपना जीवन जीती है जिसका पुरुष सत्ता को एहसास–भर भी नहीं होता है। आर्थिक रूप से निर्भर होने के साथ ही उसका मन भी गिरवी रखा रहता है। स्त्री के लिए मन की स्वतन्त्रता आवश्यक है। जब वह मन से स्वतन्त्र हो जायेगी तब परतन्त्रता के बन्धन शिथिल होने में अधिक समय नहीं लगेगा। बचपन से ही उसे औरत के रूप में ढालने की प्रक्रिया तेज हो जाती है। पाप और पुण्य की दौड़ में उसे पुण्य कमारे के लिए पितृसत्ता के अधीन माता–पिता की हाँ में हाँ मिलाना सिखाया जाता है। तर्कहीन कर उसके मन को मारा जाता है। बालिका की हर एक हरकत पर परिजनों की नजर रहती है जबकि बालक की हरकतों को बचपना कहकर टाल दिया जाता है। जर्मेन ग्रीयर लिखते हैं ''जब छोटे–छोटे लड़के अपने आसपास के क्षेत्र की खोज करने और उस पर दादागिरी जमाने के लिए गुटों और गिरोहों में संगठित हो रहे होते हैं तब उसे बुरे–बुरे लोगों के किस्से सुनाकर घर में अकेला किया जा रहा होता है, उसकी नजरबन्दी को सुरक्षा के नाम पर न्यायोचित ठहराया जाता है हालाँकि सबसे खतरनाक जगह घर ही है।''[1]

मुख्य शब्द

भीष्म साहनी, स्त्री, स्वतंत्रता, परिवार, सुरक्षा.

शोध आलेख

भीष्म साहनी के कथा साहित्य में अन्तर्विरोधों व जीवन के द्वन्द्वों, विसंगतियों से जकड़े मध्य वर्ग के साथ ही निम्न वर्ग की जिजीविषा और संघर्षशीलता को उद्घाटित किया गया है। जनवादी कथा आन्दोलन के दौरान भीष्म साहनी ने सामान्य जन की आशा, आकांक्षा, दुरूख, पीड़ा, अभाव, संघर्ष तथा विडम्बनाओं को अपने उपन्यासों से ओझल नहीं होने दिया। नई कहानी में

उन्होंने कथा साहित्य की जड़ता को तोड़कर उसे ठोस सामाजिक आधार दिया। एक भोक्ता की हैसियत से भीष्म जी ने देश के विभाजन के दुर्भाग्यपूर्ण खूनी इतिहास को भोगा है, जिसकी अभिव्यक्ति 'तमस' में हम बराबर देखते हैं। जहाँ तक स्त्री मुक्ति की समस्या का प्रश्न है तो उन्होंने अपनी रचनाओं में स्त्री के व्यक्तित्व विकास, स्वातंत्र्य, एकाधिकार, आर्थिक स्वतन्त्रता, स्त्री शिक्षा तथा सामाजिक उत्तरदायित्व आदि उसकी 'सम्मानजनक स्थिति' का समर्थन किया है। एक तरह से देखा जाए तो साहनी जी प्रेमचंद के पदचिन्हों पर चलते हुए उनसे भी कहीं आगे निकल गए हैं।

उनकी रचनाओं में सामाजिक अन्तर्विरोध पूरी तरह उभरकर आया है। राजनैतिक मतवाद अथवा दलीयता के आरोप से दूर भीष्म साहनी ने भारतीय राजनीति में निरन्तर बढ़ते भ्रष्टाचार, नेताओं की पाखण्डी प्रवृत्ति, चुनावों की भ्रष्ट प्रणाली, राजनीति में धार्मिक भावना, साम्प्रदायिकता, जातिवाद का दुरुपयोग, भाई–भतीजावाद, नैतिक मूल्यों का ह्रास, व्यापक स्तर पर आचरण भ्रष्टता, शोषण की षडयन्त्रकारी प्रवृत्तियों व राजनैतिक आदर्शों के खोखलेपन आदि का चित्रण बड़ी प्रामाणिकता व तटस्थता के साथ किया है। उनका सामाजिक बोध व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित था। उनके उपन्यासों में शोषणहीन, समतामूलक प्रगतिशील समाज की रचना, पारिवारिक स्तर, रूढ़ियों का विरोध तथा संयुक्त परिवार के पारस्परिक विघटन की स्थितियों के प्रति असन्तोष व्यक्त हुआ है। भीष्म जी का सांस्कृतिक दृष्टिकोण नितान्त वैज्ञानिक और व्यावहारिक है, जो निरन्तर परिष्करण परिशोधन व परिवर्धन की प्रक्रिया से गुजरता है। प्रगतिशील दृष्टि के कारण वह मूल्यों पर आधारित ऐसी धर्मभावना के पक्षधर हैं, जो मानव मात्र के कल्याण के प्रति प्रतिबद्ध और उपादेय है।

यदि स्त्री–पुरुष सम्बन्ध की बात की जाए तो भीष्म साहनी भारतीय गृहस्थ जीवन में स्त्री–पुरुष के जीवन को रथ के दो पहियों के रूप में स्वीकार करते हैं। विकास और सुखी जीवन के लिए दोनों के बीच आदर्श संतुलन और सामंजस्य का बना रहना अनिवार्य है। उनकी रचनाओं में सामंजस्यपूर्ण जीवन जीने वाले आदर्श दम्पत्तियों को बड़ी गरिमा के साथ रेखांकित किया गया है। उनका विश्वास है कि स्त्रियों के लिए समुचित शिक्षा, आर्थिक स्वतंत्रता व व्यक्तित्व विकास की सुविधा आदर्श समाज की रचना के लिए नितान्त आवश्यक है। वह स्त्रियों के व्यक्तित्व विकास के पक्षपाती थे, जो अवसर पाकर अपना चरम विकास कर सकती है। भीष्म साहनी परम्परा से चली आ रही विवाह की जड़ परम्परा को स्वीकार न करके भावनात्मक एकता और रागात्मक अनुबंधों को विवाह का प्रमुख आधार मानते थे। मानवीय मूल्यों पर आधारित उनकी धर्म भावना इंसान को इंसान से जोड़ती है न कि उन्हें पृथक करती है। उनके उपन्यासों में शोषणविहीन समतामूलक प्रगतिशील समाज की स्थापना के साथ समाज में व्याप्त आर्थिक विसंगतियों के त्रासद परिणाम, धर्म की विद्रूपता व खोखलेपन को उद्घाटित किया गया है।

भीष्म साहनी के कथा साहित्य में स्त्री स्वतंत्रता एक प्रमुख यथार्थवादी मुद्दा है, जहाँ वे पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की घुटन, शोषण और संघर्ष को चित्रित करते हैं। 'बसंती', 'कुंतो' और 'माधवी' जैसी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने आर्थिक स्वतंत्रता, शिक्षा और व्यक्तिगत अस्तित्व के लिए संघर्षरत नारी को सशक्त रूप में प्रस्तुत किया है, जो त्याग की प्रतिमूर्ति न होकर अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है। परिवार में स्त्री को उठने–बैठने से लेकर हँसने बोलने तक की शिक्षा दी जाती है भीष्म साहनी अपनी बहनो के साथ होने वाले पितृसत्तात्मक व्यवहार को अंकित करते हुए लिखते हैं ''बस–बस, वीरों, सुमित्रा, अब हँसना बंद करो। लड़कियों इतना ऊँचा ऊँचा नहीं हँसतीं।''[2] सुनते ही दोनों बहनें चुप हो जातीं।

माँ कहती थीं कि बहनों का छज्जे पर जाना उस दिन से बन्द हो गया था। जब सडक पर जाते किसी आवारा लडके ने छज्जे पर कंकड़ फेंका था। तब से पिताजी बहनों को छज्जे पर आना ही नहीं खिड़कियों में से बाहर झाँकने को भी मना कर दिन था।

भीष्म साहनी की पास–फेल कहानी में लड़कियों की सगाई शादी में आने वाली परेशानियों के साथ ही लड़के के परिजनों द्वारा लड़की को इस तरह से देखना–परखना जैसे बनिये की दुकान से आटा–दाल खरीदते वक्त लोगों द्वारा कनखियों से दूसरी वस्तुओं की तरफ भी नजर दौड़ा जाने जैसे लगता है। मुन्नी का रिश्ता तय करवाने के

लिए उसकी चाची और बड़ी बहन निर्मला आये दिन किसी–न–किसी हॉटल में लड़के के परिजनों की फरमाईश पर पहुँच जाती थी। मुन्नी को अपने रिश्ते के लिए इस तरह से पापड़ बेलते तीन साल हो गये थे।

मुन्नी का रिश्ता नहीं होने की वजह उसका भय था। वह अपनी ईच्छाओं को नहीं समझती थी। जब कभी लड़का देखने जाने की बात होती तब सिर्फ लड़के की इच्छा और विचारधारा के अनुकूल मुन्नी के कपड़े बदल दिये जाते अर्थात् विवाह पूर्व सिर्फ बात बन जाने की गरज में ही स्त्री द्वारा हथियार डाल समर्पण कर देना। मुन्नी का जरूरत से ज्यादा शर्माना उसके आतंक को दर्शाता है। प्रायः भारतीय समाज में रिश्ते तय लडकियों के गुणों के आधार पर किये जाते हैं। इसमें लड़के को क्या आता है और क्या नहीं इससे कुछ मतलब नहीं होता। उसका रोजगार उसके अवगुणों को छुपा देता है।

भीष्म साहनी की 'घर की इज्जत' कहानी में सुनंदा का पति बड़े भाईसाहब के सिखाये अनुसार अपनी पत्नी पर अपने पति का रोब गांठता है। कहना न मानने पर घर से निकाल देने की धमकी भी देता है। ये संस्कारों या व्यवहार उसका अपना नहीं था बल्कि थोपा हुआ था। थोपे गये संस्कारों के वशीभूत होकर ही वह सुनंदा पर गरियाता है। बडे भाई साहब सुनंदा के नाटक में भाग लेने को सामाजिक मर्यादा के विरुद्ध मानते हैं। वह अपने छोटे भाई को स्त्री के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक मर्यादा का पाठ पढ़ाते हुए कहता है कि ''कुलीन घरो की बहू–बेटियों लोगों के सामने बेपर्दा होकर नहीं आती। शादी के बाद लडकी को अपने नए घर के जीवन में ढल जाना चाहिए। सुनंदा पर से भी मायके का रंग जितनी जल्दी घुल जाए उतना ही अच्छा। तुम इस मंझली बहू की बात भूल गए? जब आई थी तो अपना अलग घर बसाना चाहती थी। यदि इसकी बात मान ली जाती तो यह घर कब का टूट गया होता। मगर अब कितनी सीधी हो गई है। स्त्रियों की चंचलता को तोडना ही पड़ता है।''[3]

भारतीय समाज एक पितृसत्तात्मक फैक्ट्री है जिसमें वे अपने अनुसार स्त्रियों पर नियन्त्रण रखकर उन पर डर व आतंक का मुलम्मा चढाकर पितृसत्तात्मक आवरण पहनाकर स्वतन्त्रमन, अस्तित्व स्वाभिमान की मौत पर पितृसत्ता के बिल्कुल अनुकूल स्त्री का निर्माण किया जाता है। 'घर की इज्जत' की मंझली बहू पितृसत्तात्मक फैक्ट्री का प्रोड्क्ट नहीं थी उसे इस रूप में गढ़ने के लिए लगभग एक वर्ष तक मानसिक प्रताडना दी गई थी। मझली बहू की पीडा असहनीय थी। वो जैसी थी, जिस तरह थी वह ढंग घर वालों को स्वीकार नहीं था। उसे बदला गया उसके उठने–बैठने, हँसने यहाँ तक की बात करने के तरीके पर भी पाबंदी लगा दी गई। जब वह सुनंदा के स्वतन्त्र व्यक्तित्व को देखती तो उसके मन में एक टीस उत्पन्न होती। प्रायः देखा गया है कि स्त्रियों उस परम्परा का क्षणिक विरोध तो करती है लेकिन घर से निकाल दिये जाने का भय उनके विरोध का गला घोंट देता है। ऐसे में परतन्त्र स्त्री के मन में स्वतन्त्र स्त्री के प्रति घृणा का संचार होता रहता है तथा वह उस क्षण का इंतजार कर रही होती है जब स्वतन्त्रता के पंख नोचे जाने लगते है। इस तरह यह भी पितृसत्ता का अंग बन जाती है।

उमा चक्रवर्ती लिखती है ''पितृसत्ता महज एक वैचारिक व्यवस्था नहीं है बल्कि उसका एक भौतिक आधार भी है। इस प्रकार, एक बार महिलाओं को वंचित कर देने से उनका सहयोग प्राप्त करना आसान हो जाता है क्योंकि जो व्यवस्था का अनुकरण करने लगती है उन्हें न केवल वर्गीय सुविधाएं मिलने लगती है बल्कि मान–सम्मान के तमगों से भी नवाजा जाता है। इस प्रकार, जो स्त्रियाँ पितृसत्ता के कायदे–कानूनों और तौर–तरीकों को अपना सहयोग या सहमति नहीं देती है उन्हें पथभ्रष्ट (Deviant) करार दे दिया जाता है और उन्हें उनके पुरुषों के भौतिक संसाधनों के उपभोग से बेदखल किया जा सकता है। इस प्रकार सम्मानित और पथभ्रष्ट के बीच विभाजन महिलाओं को एक–दूसरे से काट देता है जबकि वह पहले से ही वर्गों के स्तर पर बंटी हुई भी हो सकती है।''[4]

स्त्री जब अपनी परतंत्रता के तंतु शिथिल करने लगती है तो पितृसत्ता की आँखों की चुभन भी तेज होने लगती है। 'आवाजें' कहानी में दिखाया गया है कि दीवानचंद की बहू जब तक घूंघट के पीछे लुकी छिपी रहती है तो पारिवारिक मर्यादा के तंतु नहीं लडखडाते ''पर अब, सिर ढकना तो दूर रहा, कई बार बहू अपनी चुन्नी को कमर में बांध लेती और खिले–खिले चेहरे के साथ हँसती हुई कूदकर अपने पति के पीछे बैठ जाती थी, और लाला दीवानचंद देखते रह जाते थे और अब तो बहू नौकरी की तलाश में भी जाने लगी थी।''[5]

'साग भीट' कहानी में भीष्म साहनी एक नया प्रयोग करते दिखते हैं। इस कहानी में एक स्त्री के एकालाप के माध्यम से जहाँ एक ओर मध्यवर्गीय स्त्री के मनोविज्ञान को समझने का प्रयास किया है वहीं दूसरी ओर मध्यवर्गीय परिवार के पुरुष की सोच और समाज में पितृसत्ता की गहरी जड़ों को भी देखने का प्रयास किया गया है। स्त्री का एकालाप में बार–बार यह दोहराना कि ''मर्द लोग बड़े समझदार होते हैं।''[6] स्त्री जीवन पर पितृसत्ता की गहरी जड़ों की ओर इशारा करता है। इसी प्रकार 'अहम ब्रह्मास्मि' कहानी भीष्म साहनी की गहरी मनोवैज्ञानिक पकड़ को स्पष्ट कर देती है।

भीष्म साहनी के स्त्री पात्र परतंत्रता से मुक्ति के लिए संघर्षरत है। वे घरों की घुटन में कैद जरूर है परन्त उनकी इच्छा शक्ति मरी नहीं है। भीष्म के अधिकांश स्त्री पात्रों के निर्णयों की स्वतन्त्रता उनके हाथ में है। उनका सामना पितृसत्ता द्वारा स्त्री के लिए स्थापित भय से होता है, परन्तु जोड़–तोड़ करके वे अपने लिये जगह बना ही लेता है।

निष्कर्ष

भीष्म साहनी के कथा साहित्य में स्त्री स्वतंत्रता के प्रमुख पहलुओं को इन बिंदुओं के आधार पर देख सकते हैं:

1. **पितृसत्ता के खिलाफ विद्रोहः** भीष्म साहनी के उपन्यासों में स्त्रियाँ मात्र त्याग की मूरत नहीं हैं, बल्कि वे अपनी इच्छाओं और हक के लिए आवाज उठाती हैं। 'बसंती' में निम्न वर्ग की नारी के जीवट और स्वतंत्रता की आकांक्षा का चित्रण है।
2. **मिथकीय पात्रों का पुनर्पाठ (माधवी):** नाटक 'माधवी' में पौराणिक कथा के माध्यम से स्त्री के दैहिक शोषण और उसे वस्तु की तरह बेचे जाने के खिलाफ आवाज उठाई गई है, जो पितृसत्तात्मक नैतिकता पर कड़ा प्रहार है।
3. **विभाजन और नारी की त्रासदी (तमस):** तमस में नारी को केवल पीड़ित ही नहीं, बल्कि भीषण दंगों के बीच आत्मसम्मान की रक्षा के लिए सर्वोच्च बलिदान (आत्महत्या) देने वाली, दृढ़निश्चयी और निर्भीक दिखाया गया है।
4. **मध्यवर्गीय नारी की घुटनः** साहनी ने मध्यमवर्गीय परिवारों में नारी के पारिवारिक बंधनों, घुटन और विवशता को भी उजागर किया है, जहाँ वह परंपराओं और आभूषणों के मोह में जकड़ी होती है।

अतः हम देखते हैं कि साहनी के स्त्री पात्रों में शिक्षा और आधुनिक चेतना के माध्यम से स्वतंत्र अस्मिता खोजने की छटपटाहट स्पष्ट दिखाई देती है, जो उन्हें समकालीन हिंदी कथा साहित्य में स्त्री विमर्श का एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर बनाता है।

संदर्भ सूची

1. ग्रीयर, जर्मन (2005) *बंधुआ स्त्री,* अनुवाद मधु बी जोशी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 73।
2. साहनी, भीष्म (2004) *आज के अतीत,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 18।
3. साहनी, भीष्म (1953) *भाग्यरेखा,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 116।
4. चक्रवर्ती, उमा (2003) *आज का स्त्री आंदोलन,* सं. रमेश उपाध्याय, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 13।
5. साहनी, भीष्म (2004) *आज के अतीत,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 14।
6. साहनी, भीष्म (2009) *मेरी श्रेष्ठ कहानियाँ,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 56।

****